उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल

2022 की रिट याचिका (प्रकीर्ण वाद संख्या –2999)

जागीर सिंह और अन्य .....याचिकाकर्ताओं

बनाम

श्रीमती कुलवंत कौर .....प्रत्युत्तरदाता

याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री सिद्धार्थ सिंह, अधिवक्ता।

प्रत्युत्तरदाता की ओर से श्री एम.एस.त्यागी, वरिष्ठ अधिवक्ता,

श्री अधिवक्ता राजेंद्र टम्टा द्वारा सहायता प्रदान की गई।

02.12.2022

न्यायमूर्ति माननीय मनोज कुमार तिवारी,

1. यह रिट याचिका 2017 के मूल वाद संख्या 177 में अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश प्रथम, हरिद्वार द्वारा पारित दिनांक 18.07.2022 के आदेश और 2022 के पुनरीक्षण संख्या 48 में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश तृतीय, हरिद्वार द्वारा पारित 15.02.2022 के फैसले के खिलाफ निर्देशित की गई है।

2. विवादित आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय ने कहा कि सिविल न्यायालय के समक्ष प्रत्युत्तरदाता द्वारा दायर स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद उत्तर प्रदेश ज़मीदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 331 (इसके बाद "जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम" के रूप में संदर्भित) द्वारा प्रतिबंधित नहीं है। विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी।

3. तथ्य, जिस पर कोई विवाद नहीं है, यह है कि वादी और प्रत्युत्तरदाता दोनों को ग्राम पीटपुर, परगना रुड़की, जिला हरिद्वार में स्थित खसरा नंबर 3 एम में शामिल कृषि भूमि के संबंध में भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया है जिसे

उन्होंने लखविंदर सिंह और बलविंदर सिंह से अलग-अलग विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदा था। याचिकाकर्ताओं ने जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 176 के अंतर्गत सहायक कलेक्टर, प्रथम वर्ग, हरिद्वार के समक्ष संयुक्त जोत के विभाजन के लिए वाद दायर किया, जो लंबित है। प्रत्युत्तरदाता ने सिविल न्यायाधीश, हरिद्वार की न्यायालय में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक वाद दायर किया, जिसमें याचिकाकर्ताओं को दिनांक 14.12.2001 को पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदी गई उसकी भूमि पर उसके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका गया।

4. प्रत्युत्तरदाता द्वारा दायर निषेधाज्ञा वाद में, याचिकाकर्ताओं ने लिखित कथन दायर किया, जिसमें कहा गया है कि, जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 331 में निहित प्रावधान के मद्देनजर, वाद सिविल न्यायालय के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं है। विवाद्यक संख्या 4 वाद की पोषणीयता के प्रश्न पर तैयार किया गया था, हालांकि, उक्त विवाद्यक का निर्णय वादी (यहां प्रत्युत्तरदाता) के पक्ष में और याचिकाकर्ताओं के खिलाफ किया गया था। विचारण न्यायालय ने राम अवलंब और अन्य बनाम जटा शंकर और अन्य के मामले में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए फैसले का आधार लिया, जिसे 1968 एससीसी ऑनलाइन इल्ला० 178: एआईआर 1969 इल्ला० 526 (एफ0बी0) में रिपोर्ट किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने धारा 115 सी.पी.सी. के अंतर्गत दायर पुनरीक्षण में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी, जिसे 15.10.2022 के फैसले के अंतर्गतअतिरिक्त जिला न्यायाधीश तृतीय, हरिद्वार द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार, व्यथित याचिकाकर्ताओं ने विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी है।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि नीचे दिए गए दोनों विद्वान न्यायालयों ने प्रतिवादियों के खिलाफ विवाद्यक संख्या 4 पर निर्णय लेने में त्रुटि की है, जबकि वादी को भूमि के संबंध में प्रतिवादियों के साथ सह-मालिक के रूप में दर्ज किया गया है और सह-मालिक अपने सह-मालिकों के खिलाफ निषेधाज्ञा की मांग करने का हकदार नहीं है, जब विभाजन का वाद सक्षम राजस्व न्यायालय के समक्ष लंबित है।

6. पक्षकारों के वकीलों को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया। जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 331 तैयार संदर्भ के लिए नीचे प्रस्तुत की गई है:

धारा 331 इस अधिनियम के अधीन वादों आदि की अपेक्षा - (1) ऐसी दशा को छोड़कर, जिसके विषय में इस अधिनियम द्वारा या कोई व्यवस्था की गई हो, अनुसूची 2 के स्तम्भ 3 में उल्लिखित न्यायालय को छोड़कर कोई दूसरा न्यायालय उक्त अनुसूची के स्तंभ 3 में उल्लिखित किसी वाद, प्रार्थना पत्र या अन्य कार्यवाही की या ऐसे वाद हेतु पर आधारित वाद प्रार्थना पत्र या अन्य कार्यवाही की जिसके संबंध में किसी ऐसे वाद या प्रार्थना पत्र द्वारा कोई अनुतोष किया जा सकता था, सिविल प्रक्रिया संहिता,1908 में किसी किसी बात के रहते हुए भी, अवेक्षा न करेगा:

किंतु प्रतिबंध यह है कि जब किसी खाते अथवा उसके भाग के संबंध में धारा 143 के अधीन प्रखयापन कर दिया गया हो तो अध्याय 8 के अधीन वादों, प्रार्थना पत्रों अथवा कार्यवाहियों से संबंध अनुसूची 2 के निदेश ऐसे खाते अथवा उसके भाग पर लागू नहीं होंगे।

स्पष्टीकरण – यदि वाद हेतुक ऐसा हो जिसके संबंध में माल न्यायालय द्वारा अनुतोष दिया जा सकता है तो यह बात सारवान नहीं कि सिविल न्यायालय से मांगा गया अनुतोष उस अनुतोष के ठीक समान न हो जिसे राजस्व न्यायालय ने दिया होता।

(1-क) उपधारा (1) में निहित किसी बात के होते हुए यह आपत्ति कि द्वितीय अनुसूची के स्तंभ 4 में उल्लिखित न्यायालय अथवा सिविल न्यायालय ने जैसी भी स्थिति हो, जो वाद प्रार्थना पत्र या कार्यवाही के संबंध मे अधिकार क्षेत्र नहीं रखता, उसके संबंध में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। किसी अपीलीय या पुनरीक्षण करने वाले न्यायालय द्वारा ग्रहण न की जाएगी जब तक कि प्रारंभिक न्यायालय ने सर्वप्रथम संभावित अवसर पर उसे विचारार्थ ग्रहण न किया हो तथा उन सभी मामलों में जहां वाद पद ऐसे निपटारे पर या उसके पूर्व तय किए जा चुके हैं और जब तक परिणामतः न्याय में असफलता न प्राप्त हुई हो।

2) ऐसी दशा को छोड़कर, जिसके विषय में आगे व्यवस्था की गई है, अनुसूची के स्तम्भ 3 में उल्लिखित व्यवहारों में से किसी मे दी गई किसी आदेश या डिक्री के विरुद्ध कोई अपील ना हो सकेगी।

(3) इस अधिनियम की द्वितीय अनुसूची के स्तंभ 4 में उल्लिखित किसी न्यायालय द्वारा, उसके स्तम्भ 3 में उल्लिखित कार्यवाहियों में पारित किसी डिक्री या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47 के अधीन किसी आदेश या धारा 104 या उस संहिता की प्रथम अनुसूची के आदेश 43 नियम 1 में उल्लिखित

प्रकार के किसी आदेश के विरुद्ध अपील उसके स्तम्भ 5 में उल्लिखित किसी न्यायालय अथवा प्राधिकारी के समक्ष दायर की जा सकेगी।

(4) उपधारा (3) के अधीन की गई अपील में दी गई अंतिम आज्ञा या डिक्री के विरुद्ध अपील, अनुसूची के स्तंभ 6 में उल्लिखित यदि कोई प्राधिकारी हो गया उसके पास सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 में निर्दिष्ट किसी भी आधार पर की धारा सकेगी।

7. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क है कि सिविल न्यायालय जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 331 में अभिव्यक्त वर्जन को ध्यान में रखते हुए कृषि भूमि के संबंध में वाद पर विचारण नहीं कर सकता है। इस प्रकार, वह निवेदन करता है कि प्रत्युत्तरदाता के लिए एकमात्र उपलब्ध उपाय उक्त अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में प्रदान किए गए फ़ोरम में था।

8. जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। उक्त अधिनियम में , विशेष रूप से अनुसूची में वादों , आवेदनों आदि का उल्लेख किया गया है, जिसका संज्ञान राजस्व न्यायालय द्वारा लिया जाना है।

9. जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 331 को द्वितीय अनुसूची के साथ संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि असामी को निष्कासित करने या बिना हक़ के भूमि पर कब्जा करने वाले व्यक्ति को बेदखल करने के लिए वाद सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी के समक्ष दायर किया जाता हैं, इसी प्रकार, कृषि भूमि के संबंध में अधिकारों की घोषणा के लिए वाद केवल सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी के समक्ष दायर किया जा सकता है। तथापि, अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में स्थायी निषेधाज्ञा से अनुतोष का दावा करने के लिए कोई फोरम उपलब्ध नहीं है। वास्तव में, 'निषेधाज्ञा' शब्द का उपयोग केवल द्वितीय अनुसूची की प्रविष्टि 23 में किया जाता है, जो धारा 208 को संदर्भित करता है और यह प्रावधान करता है कि मुआवजे के लिए या अपशिष्ट या नुकसानी की क्षतिपूर्ति के लिए वाद सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी के समक्ष दायर किया जा सकता है, हालांकि, प्रत्युत्तरदाता द्वारा माँगा गया अनुतोष धारा 208 के दायरे में नहीं आता है। संदर्भहेतु, जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 208 निम्न दी गई है:

"208. अपशिष्ट या क्षति के मुआवजे और क्षतिपूर्ति के लिए वाद धारा 206 में किसी भी बात के बावजूद, गांव सभा या भूमि धारक, निष्कासन के लिए वाद दायर करने के बदले, वाद कर सकता है-

(a) मुआवजे के साथ या बिना निषेधाज्ञा के लिए; या

(b) जोत के कारण हुए अपशिष्ट या क्षति की मरम्मत के लिए।

10. राम अवलम्ब और अन्य बनाम जटाशंकर और अन्य के मामले में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ 1968 एससीसी ऑनलाइन इला0 178 में कृषि भूमि से संबंधित मामलों के कुछ वर्गों के संबंध में जेड0ए0 और एल0 आर0 अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के अपवर्जन पर विचार करते हुए अवधारित किया कि एक सिविल न्यायालय के पास कृषि भूमि के संबंध में वाद पर विचार करने की शक्ति है। जहां वादी द्वारा माँगा गया मुख्य अनुतोष निषेधाज्ञा और विध्वंस की है, अनुतोष जो केवल सिविल न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है । आगे यह अवधारित किया गया कि जहां सिविल न्यायालय द्वारा मुख्य अनुतोष संज्ञेय है, वाद केवल सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय होगा और सहायक अनुतोष, जो राजस्व न्यायालय द्वारा दी जा सकती है, सिविल न्यायालय सिविल न्यायालय द्वारा भी दी जा सकती है हालाँकि, जहां मुख्य अनुतोष राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, वाद केवल राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय होगा और यह तथ्य कि सिविल न्यायालय में अनुषांगिक अनुतोष का दावा किया गया है, मुकदमे के लिए उचित मंच निर्धारित करने के लिए सारहीन होगा।उक्त निर्णय का प्रासंगिक सार निम्नवत प्रस्तुत किया गया है:

"80. उन सभी मामलों में विचार करने का मुख्य बिंदु यह है कि जहां कार्रवाई के एक निश्चित वाद हेतुक पर दो अनुतोषों का दावा किया जा सकता है, दोनों अनुतोषों में से कौन सा अनुतोष मुख्य अनुतोष है और कौन सा अनुतोष अनुषांगिक अनुतोष हैं। जहां मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर ध्वस्तीकरण एवं निषेधाज्ञा की राहत ही मुख्य अनुतोष है वहां ऐसा कोई कारण नहीं हो सकता है कि मुख्य अनुतोष, अर्थात्, वास्तविक और पर्याप्त अनुतोष, कार्रवाई का वाद हेतुक कब्जे का नहीं हो सकता है, तो वाद निश्चित रूप से राजस्व न्यायालय में होगा। हमारी राय में कोई भी कड़े नियम निर्धारित करना कठिन है कि जहां एक अतिचारी के खिलाफ वाद लाया जाता है, वादी को प्रभावी अनुतोष के

रूप में दावा करने का एकमात्र अनुतोष कब्ज़ा है और उसे निषेधाज्ञा आदेश प्राप्त करने और अतिचारी द्वारा किए गए निर्माणों को ध्वस्त करने की कोशिश करने की आवश्यकता नहीं है। राजस्व न्यायालयों को निषेधाज्ञा और विध्वंस की अनुतोष देने का अधिकार नहीं दिया गया है और यदि प्रत्युत्तरदाता अपने खिलाफ कब्जे के लिए डिक्री पारित होने के बाद विवाद में भूमि से सामग्री लेने से इनकार करता है, तो वादी का मुख्य उद्देश्य विफल होगा। इसलिए, एक सिविल न्यायालय के पास वाद पर विचार करने की अधिकारिता होगी, जहां वादी द्वारा मांगा गया मुख्य अनुतोष निषेधाज्ञा और विध्वंस की है, अनुतोष जो केवल सिविल न्यायालय द्वारा दी जा सकती है। कब्जे की अनुतोष केवल अनुषांगिक अनुतोष होगा जिसे सिविल न्यायालय निषेधाज्ञा और विध्वंस के लिए वाद, संज्ञान लेने के बाद कर सकता है। हम मेवा बनाम मेवा के मामले में न्यायमूर्तिगण दयाल और सेठ, द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। बलदेव [1966 ए.एल.जे. 1084] कि एक बार जब वाद सिविल न्यायालय में मुख्य अनुतोष के लिए सुनवाई योग्य हो जाता है, तो सिविल न्यायालय के लिए कार्रवाई के एक ही वाद हेतुक से सभी संभावित अनुतोष देने के लिए कोई रोक नहीं है। हालांकि, हम मुक्तेश्वरी प्रसाद तिवारी बनाम राम वली [1965 ए.एल.जे. 1137.] के मामले में डिवीजन बेंच द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से बहुत अलग हैं कि जब भी कोई वाद किसी अतिचारी के खिलाफ विध्वंस और कब्जे के लिए होता है, तो यह हमेशा माना जाना चाहिए कि मुख्य अनुतोष कब्जे का था । हमारा विचार है कि इस प्रश्न का निर्धारण एक ही वाद हेतुक से उत्पन्न होने वाली कई उपचारों में से कौन सी मुख्य अनुतोष है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

81. इसके अतिरिक्त, हमारा विचार है कि वाद हेतुक आधार पर -

(a) मुख्य अनुतोष राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, वहाँ वाद केवल राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय होगा। तथ्य यह है कि सिविल न्यायालय द्वारा दावा की गई अनुषांगिक अनुतोष वाद के लिए उचित फोरम निर्धारित करने के लिए तत्वहीन होंगी;

(b) मुख्य अनुतोष सिविल न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, वहाँ वाद केवल सिविल न्यायालय द्वारा संज्ञेय होगा और सहायक अनुतोष, जो राजस्व न्यायालय द्वारा दी जा सकती है, सिविल न्यायालय द्वारा भी दी जा सकती है।

82. हमारा यह भी विचार है कि उपरोक्त सिद्धांत कृषि भूमि से संबंधित निषेधाज्ञा और विध्वंस के लिए एक वाद पर भी लागू होगा और अतिचारी के खिलाफ लाया गया है। माननीय न्यायाधीशों के प्रति बहुत सम्मान के साथ, जिन्होंने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया, हमारे लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है कि अतिचारियों के खिलाफ मुख्य अनुतोष हमेशा केवल कब्जे की होनी चाहिए। यह तर्क कि भूमि की परिभाषा थोड़ी बदल गई है इसलिए इस बिंदु पर पुराने वाद विधि को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अच्छी विधि के रुप में स्वयं को स्थापित नहीं करता। यह याद रखना होगा कि जहां तक वादी का संबंध है, उसने कभी भी अपनी भूमि पर कोई निर्माण करने का इरादा नहीं किया और वह अपना खाली कब्जा वापस पाना चाहता है। इसलिए, भूमि की परिभाषा में मामूली बदलाव (ताकि निर्मित भूमि को बाहर रखा जा सके) शायद ही अधिकार क्षेत्र के सवाल को प्रभावित कर सकता है।

11. माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक अन्य पूर्ण पीठ ने राम पदरथ और अन्य बनाम द्वितीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर और अन्य के मामले में (1989) 1 एडब्ल्यूसी 290 (एफबी), जिसमें जेड0ए0 और एल0आर0 अधिनियम की धारा 331 द्वारा को सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को अपवर्जित माना गया और यह अवधारित किया गया कि एक अभिलेख भूमि-धारक को, जिसके पास प्रथम दृष्टया उसके पक्ष में हक़ है, उसे अपने शून्य दस्तावेज़ को रद्द करने के लिए अनुतोष मांगने के संबंध में राजस्व न्यायालय से संपर्क करने के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता है, जिसके कारण उसे विधि के न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ा और, ऐसे मामले में , वह आनुषंगिक अनुतोष का दावा भी कर सकता है, भले ही वह राजस्व न्यायालय द्वारा दी जा सकती हो।उक्त निर्णय का प्रासंगिक सार निम्नवत प्रस्तुत किया गया है:

> "40. उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 331 उन मामलों के संबंध में सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बाहर करती है जिनके लिए 'अधिनियम' की अनुसूची II में उल्लिखित वाद , आवेदन या कार्यवाही के माध्यम से राजस्व न्यायालय से अनुतोष प्राप्त की जा सकती है। अधिनियम की धारा 331, यदि स्पष्टीकरण के बिना पढ़ी जाती है, तो कोई कठिनाई पैदा नहीं

करती है। क्षेत्राधिकार के बारे में विवाद तब उत्पन्न होता है जब स्पष्टीकरण जो धारा का एक अभिन्न अंग है, की व्याख्या की जाती है और किसी विशेष मामले के तथ्यों पर लागू किया जाता है। किसी भी सांविधिक प्रावधान के स्पष्टीकरण का उद्देश्य अधिनियम को स्पष्टीकरण के आलोक में समझना है जो आमतौर पर मूल धारा के दायरे को नहीं बढ़ाता जिसे वह समझाता है, लेकिन केवल विवाद से परे इसके अर्थ को स्पष्ट करता है। इस प्रकार स्पष्टीकरण चीजों को और अधिक स्पष्ट बनाता है और मुख्य रूप से संदेह और विवाद को दूर करने के लिए मौजूद है जो इसकी अनुपस्थिति में उत्पन्न हो सकता है। 'अधिनियम' की धारा 331 को स्पष्टीकरण के साथ नहीं पढ़ा जा सकता है जिससे सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बाहर किया जा सके, यदि कार्रवाई के समान कारण पर प्राथमिक अनुतोष सिविल न्यायालय द्वारा दी जा सकती है, इस तथ्य के बावजूद कि मुख्य अनुतोष से निकलने वाले परिणामी अनुतोष या अनुषांगिक अनुतोष, जिसका प्रदान किया जाना भी आवश्यक हो जाता है, अकेले राजस्व न्यायालय द्वारा प्रदान किया जा सकता है।

41, एक शून्य दस्तावेज़ के मामले में, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे वादी द्वारा उसकी अक्षमता के दौरान या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसका प्रतिरूपण करके या उसके पूर्ववर्ती द्वारा, जिसके लिए वह सफल हुआ था, निष्पादित किया गया था, दस्तावेज़ रद्द किया जा सकता है। यह अनुतोष हक के डेक के आधार पर वर्तमान या भविष्य में उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद या विवाद को अलग रखते हुए उचित अनुतोष निर्धारित करने के लिए अधिक है। इसके रद्द होने के बाद दस्तावेज़ उप-रजिस्ट्रार के रजिस्टर में इस तरह का समर्थन करेगा और रजिस्टर के अभिलेख सहित अनुतोष अधिनियम किसी भी कागज और राजस्व रिकॉर्ड के सुधार का आधार होगा। विशिष्ट की धारा 31 में ही बताया गया है कि निरस्तीकरण अनुतोष कौन मांग सकता है। कोई भी तीसरा व्यक्ति किसी अमान्य दस्तावेज़ को रद्द करने के लिए वाद दायर नहीं कर सकता है। यदि वास्तव में रद्दीकरण के लिए किसी डिक्री की आवश्यकता नहीं थी और वास्तविक और प्रभावी अनुतोष केवल राजस्व न्यायालय द्वारा दी जा सकती थी, तो सिविल न्यायालय की डिक्री अभी भी वैध होगी और यदि ट्रायल न्यायालय के समक्ष इस पर आपत्ति नहीं की गई तो यह अमान्य नहीं होगा। यदि इस तरह की आपत्ति मुद्दे तय होने से पहले विचारण न्यायालय के समक्ष ली गई थी और

अपीलीय और पुनरीक्षण अदालत के समक्ष आपत्ति ली गई है और फोरम बदलने के कारण न्याय में विफलता हुई है तो सिविल न्यायालय की डिक्री को बिना अधिकारिता के कहा जाता है।

12. इसी प्रकार, श्री राम और एक अन्य बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य के मामले में, जिसकी रिपोर्ट (2001) 3 एससीसी 24 में दी गई थी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के खिलाफ जेड0ए0और एल0आर0 अधिनियम की धारा 331 और अनुसूची II की रोक पर विचार करते हुए कहा कि एक अभिलेखों किया गया कार्यकाल धारक, जिसके पक्ष में प्रथम दृष्टया हक़ है और उसके पास अधिकार है, वह सिविल न्यायालय के समक्ष बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वाद दायर कर सकता है और उसे राजस्व न्यायालय में घोषणा के लिए वाद दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ नंबर 7 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"7. ऊपर उल्लिखित निर्णयों के विश्लेषण पर, हमारी राय है कि जहां प्रथम दृष्टया हक़ वाला और कब्जे में दर्ज कार्यकाल-धारक धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर प्राप्त बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए सिविल न्यायालय में वाद दायर करता है, उसे राजस्व न्यायालय में घोषणा के लिए वाद दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। इसका कारण यह है कि ऐसे मामले में, प्रथम दृष्टया, दर्ज कार्यकाल-धारक का हक़ संदेह के घेरे में नहीं है। उसे भूमि के लिए अपनी उपाधि की घोषणा की आवश्यकता नहीं है। स्थिति अलग होगी जहां कोई व्यक्ति अभिलेखों किए गए कार्यकाल-धारक नहीं है, जो धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर सिविल न्यायालय में वाद दायर करके बिक्री विलेख को रद्द करने की मांग करता है। वहां आवश्यक रूप से वादी को अपने हक़ की घोषणा की मांग करने की आवश्यकता होती है और इसलिए, उसे राजस्व न्यायालय से संपर्क करने का निर्देश दिया जा सकता है, क्योंकि बिक्री विलेख शून्य होने के कारण उसे घोषणा और कब्जे के लिए अनुतोष देने के लिए अनदेखा किया जाना चाहिए।

13. निःसंदेह, प्रत्युत्तरदाता का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज है और वह कार्यकाल धारक के रूप में अपने अधिकार या स्थिति की घोषणा की मांग नहीं कर रही है। प्रथम दृष्टया अपने पक्ष में मालिकाना हक रखने वाले अभिलेखों

किए गए कार्यकाल धारक को निषेधाज्ञा की अनुतोष के लिए राजस्व न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि एक सह-मालिक द्वारा संपत्ति के अन्य सह-मालिकों के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद नहीं चलाया जा सकता है, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गंगूबाई बबलिया चौधरी और अन्य बनाम सीताराम भालचंद्र सुखतंकर और अन्य के मामले में निर्धारित कानून के मद्देनजर भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उक्त निर्णय में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि, उपयुक्त मामलों में, संपत्ति के दूसरे सह-मालिक के खिलाफ एक सह-मालिक के पक्ष में अंतरिम निषेधाज्ञा दी जा सकती है। उक्त निर्णय के पैरा 6 को नीचे प्रस्तुत किया गया है: –

> "जब अंतरिम निषेधाज्ञा की मांग की जाती है, तो न्यायालय को यह जांचना पड़ सकता है कि क्या न्यायालय की सहायता मांगने वाला पक्ष किसी भी समय संपत्ति के कानूनी कब्जे में था और यदि यह इस तरह से स्थापित है तो प्रथम दृष्टया वाद लड़ने वाले दूसरे पक्ष से यह दिखाने के लिए कहा जाएगा कि वादी को कैसे बेदखल किया गया था? हमने इस प्रश्न को पिन-इन-इंगित किया और निवेदन सुना। हम सबूतों पर चर्चा करने और अपने निष्कर्षों को अभिलेखों करने से बचते हैं क्योंकि सबूतों का नेतृत्व अभी भी किया जाना है और विवादों और विवादों की गहराई से जांच की जानी है और इस न्यायालय द्वारा राय की कोई भी अभिव्यक्ति निष्पक्ष परीक्षण और निर्बाध निर्णय लेने में एक या दूसरे पक्ष को पूर्वाग्रह कर सकती है। इस मामले पर हमारे विचार को ध्यान में रखते हुए, हम संतुष्ट हैं कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अंतरिम निषेधाज्ञा से इनकार किया जा सकता है। इसी तरह हमारी राय है कि यदि उत्तरदाताओं को विवाद में शामिल भूमि सहित पूरी भूमि के लिए एफएसआई के उपयोग से निर्माण करने की अनुमति दी जाती है, तो विवाद का फैसला होने तक स्थिति अपरिवर्तनीय हो सकती है और मामले के निष्पक्ष और न्यायपूर्ण निर्णय को रोक देगी। यदि इसके विपरीत निषेधाज्ञा दी जाती है, जैसा कि अनुरोध किया गया है, तो प्रतिवादियों को असुविधा होने की संभावना नहीं है क्योंकि उनके पास लगभग 9000 वर्ग मीटर भूमि है, जिस पर वे निर्माण कर सकते हैं।

14. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने तब प्रस्तुत किया कि, जेड0ए0 की धारा 176 के अंतर्गत विभाजन वाद में। एल.आर. अधिनियम, सहायक कलेक्टर अस्थायी निषेधाज्ञा की अनुतोष प्रदान कर सकते हैं। इस तर्क के समर्थन में,

उन्होंने माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा श्रीमती उर्मिला देवी बनाम पूरन चंद डाबर और अन्य के मामले में दिए गए एक फैसले पर भरोसा किया, जिसकी रिपोर्ट 1999 में की गई थी।

उक्त निर्णय का पैराग्राफ नंबर 7, जिस पर भरोसा किया गया है, नीचे दिया गया है: –

"7. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि होल्डिंग के विभाजन के लिए एक वाद में, अस्थायी निषेधाज्ञा देने के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX के अंतर्गत कोई निषेधाज्ञा जारी नहीं की जा सकती है। हम अधिनियम की धारा 341 के मद्देनजर उक्त तर्क को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं, जो निम्नानुसार है:

" धारा 341 . कुछ अधिनियम का इस अधिनियम की कार्यवाही पर लागू होना - यदि इस अधिनियम के द्वारा या अधीन स्पष्ट रूप से कोई भिन्न व्यवस्था न की गई हो तो इंडियन न्यायालय फीस ऐक्ट,1870 सिविल प्रक्रिया संहिता,1908 और परिसीमा अधिनियम,1963 , उसकी धारा 5 को सम्मालित करते हुए,के निदेश इस अधिनियम के अधीन व्यवहारों को लागू होंगे।

चूंकि किसी वाद के लंबित रहने के दौरान अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX को हटाने का प्रावधान करने वाले अधिनियम द्वारा या उसके अंतर्गत कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है, इसलिए उक्त प्रावधान होल्डिंग के विभाजन के लिए एक वाद पर लागू होता है और जिस न्यायालय में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 176 के अंतर्गत वाद लंबित है, वह अपीलकर्ता को अनुतोष दे सकता था जिसकी मांग की जा रही है। वर्तमान कार्यवाही। एक स्तर पर, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देने की कोशिश की कि चूंकि अधिनियम की धारा 229 डी केवल धारा 229 बी और 229 सी के अंतर्गत दायर घोषणा के लिए वाद के संबंध में अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करती है, इसलिए अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए नागरिक प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX के प्रावधान निहित रूप से बाहर हैं। हम उक्त तर्क को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं। धारा 229 डी के अंतर्गत प्रावधान केवल आदेश XXXIX के पूरक हैं जो अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने की अनुमति देता है। धारा 229 डी को शामिल करके, घोषणा के लिए वाद में एक अस्थायी निषेधाज्ञा दी जा सकती है, हालांकि कोई स्थायी निषेधाज्ञा नहीं मांगी जा रही है, जो कि संभव नहीं होता यदि विशिष्ट

प्रावधान नहीं होता। इस प्रकार, यह तर्क कि अधिनियम की धारा 229 डी के मद्देनजर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX को बाहर रखा गया है, हमें अस्वीकार्य है।

15. उपरोक्त निर्णय में, यह माना गया था कि, जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 176 के अंतर्गत दायर विभाजन वाद में, राजस्व न्यायालय जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 341 का सहारा लेकर अस्थायी निषेधाज्ञा दे सकता है। धारा 341 में प्रावधान है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, भारतीय न्यायालय शुल्क अधिनियम और परिसीमा अधिनियम के प्रावधान जेडए और एलआर अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू होंगे। आगे यह माना गया कि धारा 229-डी, जो राजस्व न्यायालय को धारा 229-बी के अंतर्गत दायर एक घोषणात्मक वाद में अस्थायी निषेधाज्ञा देने में सक्षम बनाती है, केवल आदेश 39 सीपीसी के पूरक है जो अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने की अनुमति देता है, हालांकि, फैसले के पैरा नंबर 7 के उत्तरार्ध में, यह माना गया था कि "धारा 229-डी को शामिल करके, घोषणा के लिए वाद में एक अस्थायी निषेधाज्ञा दी जा सकती है, हालांकि कोई स्थायी निषेधाज्ञा नहीं मांगी जा रही है, जो कि संभव नहीं होता अगर विशिष्ट प्रावधान नहीं होता। इस प्रकार, धारा 176 के अंतर्गत दायर विभाजन वाद में, धारा 229-डी जैसे किसी भी सक्षम प्रावधान के अभाव में, राजस्व न्यायालय फैसले के उपरोक्त निकाले गए हिस्से में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा देखी गई बातों के अनुसार अस्थायी निषेधाज्ञा नहीं दे सकता है।

16. दोनों विद्वान अधीनस्थ न्यायालयों ने समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किया है कि प्रत्युत्तरदाता द्वारा दायर निषेधाज्ञा के लिए वाद सिविल न्यायालय के समक्ष पोषणीय है। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस तरह के निष्कर्ष में हस्तक्षेप के लिए कोई मामला प्रस्तुात नहीं कर पाए। इस प्रकार, इस न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है, जैसा कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है।

17. तदनुसार, रिट याचिका विफल और खारिज कर दी जाती है। खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

(न्यायमूर्ति मनोज कुमार तिवारी)